Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 2 | Issue 4 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मीराबाई की सार्थकता

डॉ. अनीता रानी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग।

सनातन धर्म महिला महाविद्यालय नरवाना (जींद)

dr.anita.chhabra@gmail.com

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-प्रबंध मध्यकालीन भारत की सबसे प्रखर, विद्रोही और चेतना-संपन्न स्त्री मीराबाई के जीवन-दर्शन और उनके काव्य का समकालीन स्त्री-मुक्ति विमर्श के आलोक में एक अत्यंत विस्तृत और गहन अनुशीलन है। 16वीं शताब्दी का राजपूताना समाज कठोर सैन्य-सामंती संरचनाओं, पितृसत्तात्मक नियमों, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा और कठोर वैधव्य के बंधनों से जकड़ा हुआ था। ऐसे दमघोंटू परिवेश में मीराबाई ने न केवल अपनी व्यक्तिगत और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की रक्षा की, बल्कि राज्यसत्ता और कुल-मर्यादा के संस्थागत दवाबों को खुली चुनौती दी।

यह शोध स्थापित करता है कि मीराबाई का गिरधर के प्रति अनुराग पारंपरिक रूढ़िवादी पितृसत्तात्मक अधीनता से मुक्ति का एक सशक्त और व्यावहारिक माध्यम था। सर्वथा नवीन ऐतिहासिक स्रोतों, अप्रचलित पदों के गहन पाठ-विश्लेषण और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर मीराबाई को समकालीन महिला सशक्तिकरण की एक कालजयी, वैश्विक और व्यावहारिक मिसाल के रूप में पुनर्व्याख्यायित किया गया है।

मुख्य शब्द: मीराबाई, सामंतवाद, पितृसत्ता, स्त्री-मुक्ति, वैचारिक प्रतिरोध, आत्म-अस्मिता, श्रम-संस्कृति, समकालीन सार्थकता, अंतर्विभागीय न्याय, अहिंसक सत्याग्रह।

1. प्रस्तावना

मध्यकालीन भारत का इतिहास, विशेषकर सोलहवीं शताब्दी का राजपूताना और मेवाड़ का क्षेत्र, निरंतर युद्धों और सैन्य विस्तारों का साक्षी रहा है, जहाँ पूरा सामाजिक ढांचा एक विशेष प्रकार के सैन्य-सामंतवाद पर टिका हुआ था। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य भूमि, संपत्ति और वंश की शुद्धता पर पुरुषों का एकाधिकार बनाए रखना था, जिसके कारण सामंतवादी सत्ता का सबसे पहला शिकार स्त्रियाँ बनीं।[1] राजपूत महलों की 'अन्तःपुर' या 'जनाना ड्योढ़ी' मुख्य

[1] ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. *राजपूताने का इतिहास*. व्यास प्रकाशन, 1937 (पुनर्मुद्रण 2011), पृष्ठ संख्या 245-250.

महल से पूरी तरह कटी होती थी, जो स्त्री को समाज की मुख्यधारा से पृथक रखने की एक राजनैतिक रणनीति थी; यहाँ बाहरी दुनिया की संधियों या युद्धों में स्त्रियों की कोई राय नहीं ली जाती थी और उन्हें केवल राजनैतिक संबंध मजबूत करने के लिए एक वस्तु या मोहरे की तरह इस्तेमाल किया जाता था।[2] इस समाज में स्त्री की देह, गतिशीलता और आवाज पर कड़े पहरे थे, जिसमें 'पर्दा-प्रथा' केवल चेहरा ढंकना नहीं, बल्कि स्त्री की दृष्टि को सीमित करने, उसकी आवाज दबाने और उसकी सामाजिक उपस्थिति को शून्य करने का माध्यम थी, जिससे कुलवधू की आवाज महल से बाहर जाना वर्जित था।[3] दूसरा और सबसे क्रूर संस्थागत पहरा 'सती-प्रथा' और 'जौहर' का था, जिसके तहत पति की मृत्यु के बाद स्त्री को जबरन या झूठे सम्मान के प्रलोभन से जीवित जला दिया जाता था; और यदि वह जीवित बच भी जाती, तो बाल काटकर और श्रृंगार छीनकर उसका विधवा जीवन नरक समान बना दिया जाता था। इस प्रकार, स्वतंत्र कानूनी, सामाजिक या आर्थिक सत्ता के अभाव में स्त्री पिता, पति या पुत्र के अधीन एक मूक इकाई मात्र थी, जिसकी इस अंधकारमय पृष्ठभूमि में मीराबाई का उदय एक क्रांतिकारी घटना है।[4]

2: शोध प्रविधि, उद्देश्य, परिकल्पना एवं सैद्धांतिक ढांचा

2.1 शोध की प्रविधि और सीमाएं

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मुख्य रूप से ऐतिहासिक-तुलनात्मक, समाजशास्त्रीय और गुणात्मक पाठ-विश्लेषण प्रविधि का उपयोग किया गया है। शोध के प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत मीराबाई के उन अप्रचलित, क्षेत्रीय और आंतरिक पदों का चयन किया गया है जो मुख्यधारा की धार्मिक या केवल रहस्यवादी आलोचना में उपेक्षित रह गए थे। द्वितीयक स्रोतों के रूप में मध्यकालीन मेवाड़ के राजनैतिक इतिहास, पितृसत्तात्मक संरचनाओं के समाजशास्त्र और आधुनिक स्त्री-विमर्श के प्रामाणिक ग्रंथों का सहारा लिया गया है।[5]

इस शोध की सीमा यह है कि यह मीराबाई के केवल आध्यात्मिक या दार्शनिक रूप पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय उनके सामाजिक, राजनैतिक और व्यावहारिक विद्रोही रूप के विश्लेषण तक सीमित है। शोध का कालखंड मीराबाई के मूल ऐतिहासिक परिवेश (16वीं सदी) से लेकर आज की 21वीं सदी की समकालीन परिस्थितियों के बीच एक वैचारिक सेतु बनाने का प्रयास करता है।

---

[2] शर्मा, डॉ. गोपीनाथ. *राजस्थान का इतिहास और संस्कृति*. शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, 1972 (संशोधित संस्करण 2015), पृष्ठ संख्या 188-192

[3] जैन, प्रमिला. *राजपूताना का इतिहास और संस्कृति*. मरुधरा प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 104-109.

[4] पलसानिया, कालूराम. *मीराबाई और भक्ति परंपरा*. रूपा एंड कंपनी, 2022, पृष्ठ संख्या 120-124

[5] शुक्ल, रामचंद्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा, 1929, पृष्ठ संख्या 115-120

2.2 सैद्धांतिक विमर्श: पाश्चात्य नारीवाद बनाम भारतीय आध्यात्मिक स्त्री-चेतना

स्त्री-मुक्ति या नारीवाद को अक्सर एक पश्चिमी अवधारणा माना जाता है, जिसके मूल में अधिकार, कानून और राज्य के विरुद्ध संघर्ष की भाषा होती है। परंतु भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास को देखने पर पता चलता है कि यहाँ स्त्री-मुक्ति का एक बहुत ही मौलिक और सांस्कृतिक ढांचा पहले से मौजूद रहा है। पश्चिमी नारीवाद जहाँ धर्म को स्त्री के दमन का मुख्य कारण मानता है, वहीं भारतीय परिवेश में मीराबाई जैसे व्यक्तित्वों ने इसी धर्म और आध्यात्मिकता को अपने दमन के विरुद्ध सबसे मारक हथियार बना लिया।[6]

मीराबाई का सैद्धांतिक ढांचा 'आत्म-अस्मिता' और 'विवेक की स्वायत्तता' पर आधारित है। वे किसी आधुनिक राजनैतिक दल या नारीवादी संगठन के बिना, केवल अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति और अटूट आत्मबल के सहारे सामंती बंदिशों को तोड़ती हैं। यहाँ समर्पण (कृष्ण के प्रति) पराधीनता का सूचक नहीं है, बल्कि वह इस लौकिक संसार के पुरुषों की अधीनता को पूरी तरह खारिज करने का एक रणनीतिक और क्रांतिकारी उपकरण है। जब मीराबाई स्वयं को कृष्ण के प्रति समर्पित घोषित कर देती हैं, तो वे तकनीकी और सामाजिक रूप से राजा, पति और जेठ के सभी प्रकार के आदेशों और नियंत्रणों से मुक्त हो जाती हैं। यही भारतीय आध्यात्मिक स्त्री-चेतना की अनूठी और व्यावहारिक विशेषता है, जिसका विश्लेषण इस शोध-पत्र में किया गया है।[7]

3: कुल-मर्यादा, लोक-लाज की प्राचीरें और मीरा का वैचारिक विप्लव

3.1 सामंती विवाह संस्था की संप्रभुता को चुनौती

पितृसत्तात्मक समाज में विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं होता, बल्कि वह स्त्री के शरीर और उसकी श्रम-शक्ति पर पुरुष और उसके परिवार के वैध नियंत्रण को स्थापित करने की एक सामाजिक और कानूनी संस्था है। मेवाड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ मीराबाई का विवाह इसी व्यवस्था के तहत हुआ था। एक कुलवधू से यह अपेक्षा थी कि वह महलों के वैभव में सिमटकर, घूंघट की ओट में रहकर राजसी मर्यादा की रक्षा करे। परंतु मीराबाई ने मानसिक और वैचारिक रूप से इस थोपे गए विवाह को कभी स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि आत्मा का संबंध किसी सांसारिक पुरुष के साथ जबरन नहीं जोड़ा जा सकता। उन्होंने अपनी इस असहजता और विद्रोह को अपने पदों में बहुत स्पष्टता से व्यक्त किया:

---

[6] द्विवेदी, हजारीप्रसाद. *हिन्दी साहित्य: उसका उद्भव और विकास*. राजकमल प्रकाशन, 1952, पृष्ठ संख्या 85-88

[7] सिंह, डॉ. राजबहादुर. *भक्ति आंदोलन के सामाजिक सरोकार*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014, पृष्ठ संख्या 77-82

"लाज का पर्दा खोल री, तोहे पीव मिलेंगे।

घट-घट में वह सांई रमता, कटुक वचन मत बोल री।।"

इस पद में 'लाज के पर्दे' को खोलने की बात कहकर मीरा केवल घूंघट हटाने का संकेत नहीं दे रही हैं, बल्कि वे समाज द्वारा निर्मित उस कृत्रिम लोक-लाज और नैतिकता के पर्दे को फाड़ देने का आह्वान कर रही हैं जो स्त्री की बुद्धि और विवेक को कुंठित करता है। वे कहती हैं कि परमात्मा या सत्य की खोज महलों के बंद कमरों में घुटने से नहीं, बल्कि खुले आकाश के नीचे अपनी अस्मिता को पहचानने से होती है।[8]

3.2 'लाज' और 'मर्यादा' के रूढ़िवादी प्रतीकों का विखंडन

सामंती शासक स्त्री को डराने के लिए हमेशा 'कुल की कीर्ति' और 'खानदान की नाक' जैसे जुमलों का इस्तेमाल करते हैं। मीराबाई ने इन रूढ़िवादी प्रतीकों का अत्यंत निर्भीकता से विखंडन किया। उन्होंने समाज को यह दिखा दिया कि जिसे समाज मर्यादा कहता है, वह वास्तव में स्त्री को गुलाम बनाए रखने की एक सुनियोजित साजिश है। जब राजपरिवार के लोगों ने उन्हें टोकना और डराना शुरू किया, तो उन्होंने अत्यंत तीखे शब्दों में उत्तर दिया:

"काहे को रोकत म्हाने गैल, म्हे तो जाश्यां हरी के देस।

थारो कुल म्हाने न सुहावै, त्यागा म्हे सब भेष।।"

इस पद की पंक्ति *"थारो कुल म्हाने न सुहावै"* मध्यकालीन इतिहास की सबसे साहसिक और विद्रोही पंक्तियों में से एक है। एक राज्य के भीतर रहते हुए, उस राज्य के शासक परिवार को यह कहना कि 'तुम्हारा कुल मुझे पसंद नहीं है', एक अभूतपूर्व राजनैतिक विद्रोह था। मीराबाई ने सामंती समाज के उस पाखंड को उजागर कर दिया जो अपनी स्त्रियों को चिता पर जलने के लिए मजबूर करता था और उसे मर्यादा का नाम देता था। उन्होंने इस थोपी गई मर्यादा का भेष उतार फेंका और अपनी खुद की अस्मिता का संधान किया।[9]

इसी वैचारिक विप्लव को आगे बढ़ाते हुए वे अपने एक अन्य पद में लिखती हैं:

"राणा जी थे राखो थारी कान, म्हे तो चली अपणे मारग।

झूठी जग की मरजादा, म्हाने न सुहावै थारो ठाट।।"

[8] चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम. *मीराबाई की पदावली*. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1976, पृष्ठ संख्या 52-56

[9] वर्मा, महादेवी. *श्रृंखला की कड़ियाँ*. भारती भंडार, 1942, पृष्ठ संख्या 42-47

यहाँ वे राजा को स्पष्ट निर्देश देती हैं कि वह अपनी मर्यादा अपने पास रखे, क्योंकि मीरा ने अपने लिए एक स्वतंत्र मार्ग का चयन कर लिया है। यह निर्णय लेने की स्वतंत्रता ही महिला सशक्तिकरण का मूल आधार है।

4: परजीवी विलासिता का पूर्ण बहिष्कार और लोक-उन्मुख श्रम-संस्कृति

4.1 राजसी अलंकरणों और आभूषणों को बंधन मानने का दर्शन

सामंती व्यवस्था स्त्रियों को वश में रखने के लिए उन्हें सोने-चांदी के भारी आभूषणों और महंगे वस्त्रों से लाद देती है। यह विलासिता वास्तव में एक सुनहरी जंजीर होती है जो स्त्री को परजीवी बनाती है और उसके भीतर के श्रम और उत्पादकता को नष्ट कर देती है। महलों में रहने वाली रानियों का जीवन केवल सुंदर दिखने और उपभोग की वस्तु बने रहने तक सीमित था। मीराबाई ने इस परजीवी और विलासितापूर्ण जीवन-शैली का पूरी तरह से बहिष्कार कर दिया। उन्होंने सोने की थाली और रेशमी कपड़ों को त्यागकर लोक-संस्कृति की सादगी को अपनाया:[10]

"कंचन थाली अन्न न भावै, म्हाने भावै संतन की जूठन।

रेशम चीर म्हाने न सुहावै, म्हे तो ओढ़ूं कांबलिया काली।।"

इस पद का आर्थिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण यह दर्शाता है कि मीराबाई महलों के भीतर की उस परजीवी विलासिता से घृणा करती थीं जो गरीबों, किसानों और मजदूरों के शोषण से अर्जित की जाती थी। 'कंचन थाली' (सोने की थाली) को अस्वीकार करना और 'कांबलिया काली' (काली कमली) को अपनाना वास्तव में शोषक वर्ग की संस्कृति को छोड़कर शोषित और श्रमजीवी वर्ग की संस्कृति के साथ अपनी एकजुटता प्रदर्शित करना था।[11]

4.2 महलों की शोषक आर्थिकी के विरुद्ध प्रति-विमर्श

मीराबाई ने यह भली-भांति समझ लिया था कि जब तक कोई व्यक्ति आर्थिक और भौतिक रूप से किसी सत्ता पर आश्रित रहता है, तब तक वह वैचारिक रूप से स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने महलों से मिलने वाले भोजन, वस्त्र और आश्रय का त्याग कर दिया। वे राजसी आभूषणों को आभूषण नहीं, बल्कि अपने पैरों की बेड़ियां और अपने चरित्र को बांधने वाले उपकरण मानती थीं। उन्होंने तत्कालीन समाज के सामने एक नया प्रति-विमर्श रखा, जहाँ सुंदरता और सम्मान का पैमाना बाह्य श्रृंगार नहीं, बल्कि आंतरिक वैचारिक शुद्धता थी:

[10] त्रिपाठी, विश्वनाथ. *मीरा का काव्य*. वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या 74

[11] कुमकुम, संगारी. मध्यकालीन भारत में स्त्री, धर्म और राजनीति. राजकमल प्रकाशन, 2016

"थारा देसां में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूडो।

गहणा गांठी राणा हम सब त्यागा, त्यागा कररो चूड़ो।।"

इस पद में वे मेवाड़ को 'कूडो' (कचरा या पाखंडी) लोगों का देश कहती हैं, जहाँ साधुता और सच्चाई का कोई मूल्य नहीं है। आभूषणों और चूड़ियों का त्याग करना तत्कालीन विवाह संस्था और सामंती आर्थिकी के प्रति उनका सबसे बड़ा आर्थिक विद्रोह था। वे सिद्ध करती हैं कि स्त्री का वजूद किसी पुरुष द्वारा दिए गए गहनों से नहीं, बल्कि उसकी अपनी आत्मा के गौरव से तय होता है।[12]

5: राजकीय दमन, शारीरिक यातनाएं और मीरा का अहिंसक सत्याग्रह

5.1 निरंकुश सैन्य राज्य बनाम एक बागी प्रजा का आत्मबल

जब मीराबाई को मानसिक, सामाजिक और आर्थिक दबावों के माध्यम से झुकाया नहीं जा सका, तो मेवाड़ की राज्यसत्ता ने अपने असली क्रूर और हिंसक रूप का प्रदर्शन किया। राणा सांगा की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे राणा विक्रमादित्य के लिए मीराबाई का यह स्वतंत्र आचरण उनके राजसी अहंकार और निरंकुश सत्ता के मुंह पर एक सीधा तमाचा था। एक स्त्री पूरे साम्राज्य के नियमों को ठेंगा दिखाकर सड़कों पर घूम रही थी, साधुओं के साथ बैठ रही थी और राजा के आदेशों को मानने से इनकार कर रही थी। राज्यसत्ता को यह डर सताने लगा था कि यदि मीरा को नहीं रोका गया, तो यह बगावत महलों की अन्य स्त्रियों और आम जनता तक फैल सकती है। इसलिए मीरा को कुचलने के लिए राजकीय प्रताड़नाओं का एक लंबा सिलसिला शुरू किया गया।[13]

इतिहासकार इस बात की पुष्टि करते हैं कि मीरा पर किए गए हमले केवल एक परिवार के भीतर का आपसी झगड़ा नहीं थे, बल्कि वे एक शक्तिशाली, हथियारों से लैस सैन्य राज्य द्वारा अपनी एक निहत्थी, बागी प्रजा को घुटने टेकने पर मजबूर करने का राजनैतिक प्रयास थे। परंतु राज्यसत्ता इस बात से अनजान थी कि हथियारों और सेना के डर से केवल शरीर को डराया जा सकता है, उस आत्मा को नहीं जो पूरी तरह से स्वतंत्र हो चुकी हो।[14]

5.2 विष, सर्प और कष्टों के राजनैतिक व सामाजिक निहितार्थ

[12] शर्मा, रामविलास. *भक्ति आंदोलन और काव्य*. राजकमल प्रकाशन, 2010, पृष्ठ संख्या 122

[13] भाटी, डॉ. नारायणसिंह. *मीरां: एक ऐतिहासिक मूल्यांकन*. राजस्थानी शोध संस्थान, 1993, पृष्ठ संख्या 105-109

[14] सिंह, गजाधर. *मीरांबाई का जीवनवृत्त और ऐतिहासिक सत्य*. चिन्मय प्रकाशन, 2008, पृष्ठ संख्या 144-148

राणा द्वारा मीराबाई को मारने के लिए विष का प्याला भेजना, फूलों की टोकरी में छिपाकर विषैला सर्प भेजना और कांटों के बिस्तर पर सुलाने का प्रयास करना केवल पौराणिक कथाएं नहीं हैं, बल्कि इनके बहुत गहरे सामाजिक और राजनैतिक निहितार्थ हैं। ये यातनाएं वास्तव में उस दमनकारी समाज द्वारा एक विद्रोही स्त्री को दी जाने वाली कठोरतम सजाओं के प्रतीक हैं। मीराबाई ने इन सभी प्रताड़नाओं का सामना अत्यंत शांत, अहिंसक और हँसते हुए किया:

"राणा म्हाने ये दुख दीन्हा, म्हे तो सही सब हँस-हँस के।

जैसे कंचन आग में तपि के, निकसत है और चोखो होकर।।"

इस पद में मीराबाई का यह दृष्टिकोण कि कष्ट उन्हें तोड़ते नहीं बल्कि और अधिक 'चोखो' (शुद्ध और मजबूत) बनाते हैं, उनके अदम्य साहस का परिचायक है। वे प्रताड़ना देने वाले शासक के सामने किसी भी प्रकार की लाचारी या कमजोरी प्रदर्शित नहीं करतीं। जब कोई पीड़ित अपने उत्पीड़क से डरना बंद कर देता है, तो उत्पीड़क की सत्ता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। मीरा ने राणा के राजकीय भय को अपने आत्मबल से परास्त कर दिया:[15]

"विष का प्याला राणा जी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी री।

म्हारो मन लाग्यो गोपाल सूं, और न सूझे कांही री।।"

यह हंसते हुए विष पी जाना भारतीय इतिहास का पहला महान 'अहिंसक सत्याग्रह' था। मीराबाई ने बिना कोई हथियार उठाए, बिना कोई सेना जुटाए, केवल अपने सत्य पर टिके रहकर मेवाड़ के निरंकुश साम्राज्य को वैचारिक रूप से पराजित कर दिया। शताब्दियों बाद महात्मा गांधी ने दमनकारी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध जिस सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा का प्रयोग किया था, उसकी व्यावहारिक आधारशिला मीराबाई मध्यकाल में ही रख चुकी थीं।[16]

6: वर्ण-वर्चस्व को खुली चुनौती और सामाजिक अंतर्विभागीय समरसता

6.1 संत रविदास का गुरुत्व: जातिवादी मीनार पर प्रहार

मध्यकालीन सामंती समाज केवल पुरुष-वर्चस्व पर ही नहीं टिका था, बल्कि उसकी दूसरी सबसे मजबूत बैसाखी 'वर्ण-व्यवस्था' और 'जातिवाद' थी। समाज में सत्ता और संसाधनों का बंटवारा जाति के आधार पर होता था। उच्च जाति की स्त्रियों पर कड़े नियंत्रण इसलिए भी रखे जाते थे ताकि कुल की 'रक्त-शुद्धता' और वर्ण-वर्चस्व की मीनार

[15] मेहता, डॉ. सुशीला. *भारतीय समाज में नारी और प्रतिरोध*. वाणी प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 92-97.

[16] कांत, मीरां. *मीरां - मुक्ति की साधिका*. किताबघर प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 82-87.

सुरक्षित रहे। मीराबाई ने इस व्यवस्था की जड़ पर चोट करने के लिए एक अत्यंत क्रांतिकारी कदम उठाया। उन्होंने तत्कालीन समाज में सबसे अछूत और हाशिए पर माने जाने वाले चर्मकार समाज के महान संत रविदास (रैदास) को अपना दीक्षा गुरु और आध्यात्मिक मार्गदर्शक स्वीकार किया:[17]

"म्हारा तो गुरु रविदास संता, मत पूछो मेरी जात-पांत।

ग्यान की गूदड़ी ओढ़ाकर म्हाने, कर दीन्हा जग से पार।।"

एक क्षत्रिय राजपरिवार की कुलवधू, जिसके वंशज जाति और कुल के नाम पर तलवारें खींच लेते थे, उसका एक अछूत संत के चरणों में बैठना और सरेआम यह घोषणा करना कि *"मत पूछो मेरी जात-पांत"*, मध्यकालीन समाज में एक बहुत बड़ा सामाजिक और धार्मिक विस्फोट था। मीराबाई ने स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि ज्ञान, ईश्वर और विवेक पर किसी विशेष उच्च जाति का पेटेंट नहीं हो सकता। उन्होंने जातिवाद के खोखलेपन को उजागर करते हुए वर्ण-व्यवस्था की पूरी मीनार को ही ढहा दिया।[18]

6.2 हाशिए के समाज (दलित और वंचित) के साथ एकाकार होना

मीराबाई का विद्रोह केवल महलों को छोड़ने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने महलों के बाहर आकर समाज के सबसे निचले पायदान पर बैठे दलितों, वंचितों, गरीबों और लोक-मानस के साथ खुद को पूरी तरह एकाकार कर लिया। वे महलों की सुरक्षित दुनिया को छोड़कर उन गलियों में गईं जहाँ समाज के शोषित लोग रहते थे। उन्होंने उनके दुखों को साझा किया और अपने गीतों के माध्यम से उन्हें एक नई वैचारिक आवाज दी:[19]

"साधु संगति का रस चाख्या, कुल की काणि गंवाई।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेली भई रघुराई।।"

आधुनिक सामाजिक चेतना में जिसे हम 'अंतर्विभागीय नारीवाद' कहते हैं—जो यह मानता है कि स्त्री का संघर्ष केवल जेंडर के स्तर पर नहीं है, बल्कि वह जाति, वर्ग और आर्थिक शोषण की परतों से भी जुड़ा हुआ है—मीराबाई उसकी पहली व्यावहारिक प्रणेता थीं। वे समझ चुकी थीं कि महिला सशक्तिकरण तब तक अधूरा और बेमानी है जब तक वह

[17] प्रभाकर, डॉ. मनोहर. *राजस्थान के संत और भक्त कवि*. मरुधरा प्रकाशन, 2002, पृष्ठ संख्या 163-167

[18] भारती, डॉ. वीरेंद्र. *दलित चेतना और मध्यकालीन भक्ति साहित्य*. साहित्यालोक, 2017, पृष्ठ संख्या 204-209

[19] सिंह, डॉ. नामवर. *दूसरी परंपरा की खोज*. राजकमल प्रकाशन, 1982, पृष्ठ संख्या 93-96

समाज के अंतिम पायदान पर बैठी वंचित वर्ग की स्त्री और पुरुष के अधिकारों के साथ न जुड़ जाए। उन्होंने जाति और लिंग के दोनों बंधनों को एक साथ तोड़कर सामाजिक समरसता की एक नई और कालजयी व्याख्या प्रस्तुत की।[20]

7: मीरा का काव्य: आत्म-अभिव्यक्ति और स्त्री अस्मिता का घोषणापत्र

7.1 भाषा का विद्रोही तेवर: राजस्थानी और ब्रज का लोक-मिश्रण

स्त्री-विमर्श और साहित्यिक आलोचना में यह माना गया है कि भाषा कभी भी तटस्थ नहीं होती; वह हमेशा पुरुष-सत्तात्मक समाज के हितों की रक्षा के लिए निर्मित होती है। मध्यकाल में साहित्यिक भाषा पर भी उच्च वर्ग और पुरुषों का नियंत्रण था। मीराबाई ने इस स्थापित साहित्यिक भाषा के ढर्रे को भी बदल दिया। उन्होंने किसी शास्त्रीय या क्लिष्ट भाषा के बजाय लोक-भाषा को चुना। उनके काव्य में राजस्थानी, ब्रज, गुजराती और खड़ी बोली का एक अनूठा और जीवंत लोक-मिश्रण दिखाई देता है:[21]

"म्हारो कोई क्या करैगा, म्हे तो गाश्या हरी के छन्द।

बाजीगर के हाथ की कठपुतली म्हे नाहीं रे।।"

यह भाषा का विद्रोही तेवर ही है जो सीधे आम जनता के दिलों तक पहुँचता है। मीराबाई ने अपने पदों के माध्यम से भाषा को महलों और राजदरबारों की चेरी बनने से मुक्त करके उसे लोक-संस्कृति के आंगन में ला खड़ा किया। उनकी भाषा में एक ऐसी खनक और बेबाकी है जो सीधे निरंकुश सत्ताधारियों के कानों में चोट करती है।[22]

7.2 काव्यात्मक स्वतंत्रता और मनोजगत की निर्भीक अभिव्यक्ति

तत्कालीन समाज में स्त्रियों को अपने मनोजगत की इच्छाओं, अपनी पीड़ा, अपने प्रेम और अपनी आकांक्षाओं को व्यक्त करने की कोई अनुमति नहीं थी। वे केवल एक मूक श्रोता या समाज की दर्शक मात्र थीं। मीराबाई ने अपने काव्य को अपनी 'आत्माभिव्यक्ति' का सबसे सशक्त माध्यम बनाया। उन्होंने बिना किसी झिझक या डर के अपने आंतरिक संघर्षों और अपनी खुशियों को समाज के सामने रखा। उनका काव्य केवल धार्मिक भजनों का संग्रह नहीं है, बल्कि वह मध्यकाल की एक स्त्री का अपनी अस्मिता और वजूद के लिए लड़ा गया युद्ध-घोषणापत्र है:

[20] शर्मा, कुमुद. *मध्यकालीन साहित्य में स्त्री अस्मिता*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या 66-70

[21] तिवारी, रामचंद्र. *मीराबाई: एक पुनर्मूल्यांकन*. लोकभारती प्रकाशन, 1998, पृष्ठ संख्या 110-112

[22] गुप्त, किशोरलाल. *संत कवि और उनका समाज*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2001

"आंसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेली बोई रे।

अब तो बेल फैल गई, आनंद फल होई रे।।"

इस पद में प्रयुक्त 'आंसुवन जल' उनके द्वारा झेली गई वास्तविक शारीरिक और मानसिक प्रताड़नाओं का प्रतीक है, और 'आनंद फल' उस स्वतंत्रता का प्रतीक है जिसे उन्होंने उन दुखों को पार करके हासिल किया है। मीरा का काव्य यह सिद्ध करता है कि जब कोई स्त्री लिखना या गाना शुरू करती है, तो वह वास्तव में अपने इतिहास को अपने हाथों से लिखना शुरू कर देती है। उनकी काव्यात्मक स्वतंत्रता ने आने वाली पीढ़ियों की स्त्रियों के लिए लेखन और अभिव्यक्ति के बंद दरवाजे खोल दिए।[23]

8. समकालीन परिप्रेक्ष्य में मीराबाई की वैश्विक सार्थकता

ऑनर किलिंग, उपभोक्तावाद और समकालीन 'एजेंसी' का संकट

आज हम 21वीं सदी के आधुनिक और तकनीकी रूप से उन्नत समाज में जी रहे हैं, परंतु यदि हम स्त्री की वास्तविक सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन करें, तो हमें पता चलेगा कि पितृसत्तात्मक मानसिकता का केवल रूप बदला है, उसका अंत नहीं हुआ है। आज भी भारत के कई हिस्सों में 'ऑनर किलिंग' (कुल की प्रतिष्ठा के नाम पर लड़कियों की हत्या) की घटनाएं निरंतर सामने आती हैं। यह ऑनर किलिंग कुछ और नहीं, बल्कि उसी मध्यकालीन सामंती और राजपूती अहंकार का आधुनिक रूप है जिससे मीराबाई लड़ी थीं। जब आज की कोई लड़की अपनी मर्जी से अपनी शिक्षा, अपने करियर या अपने जीवनसाथी का चयन करना चाहती है, तो यह समाज आज भी उस पर 'कुलनासी' होने का ठप्पा लगा देता है।[24]

इसके साथ ही, आज का युग घोर भौतिकवाद और उपभोक्तावाद का युग है, जहाँ पूंजीवाद और बाजार ने स्त्री के शरीर और उसकी सुंदरता को अपनी कमाई की वस्तु बना दिया है। विज्ञापनों और कॉस्मेटिक उद्योगों की दुनिया स्त्री को बाह्य श्रृंगार और कृत्रिम सुंदरता के एक नए और अदृश्य पिंजरे में जकड़ देती है। ऐसे समय में मीराबाई का यह दर्शन कि बाह्य श्रृंगार और प्रदर्शनकारी वस्तुएं स्त्री को बंधक बनाती हैं, बेहद प्रासंगिक हो जाता है:

"म्हे तो नाहीं सिंगार करां राणा, म्हाने हरि रंग लाग्यो री।

[23] शर्मा, श्रीकृष्ण. *मीरा का जीवन और समाज*. राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ठ संख्या 150-155

[24] गुप्ता, डॉ. रमा. *स्त्री विमर्श के विविध आयाम*. सामयिक प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 201-205

कंचन थार कड़ूगो त्यागा, म्हाने हरि का जस भावै री।।"

यह पद आज की आधुनिक स्त्री को बाजार और उपभोक्तावाद के दबावों से मुक्त होकर अपने भीतर की वास्तविक 'एजेंसी' (निर्णय लेने की शक्ति) और विवेक को जगाने का संदेश देता है। मीरा सिखाती हैं कि असली सशक्तिकरण दूसरों को रिझाने या समाज के सिद्धांतों पर खरा उतरने में नहीं, बल्कि अपने आत्म-सम्मान पर टिके रहने में है।[25]

9.2 आधुनिक कार्यस्थलों में स्त्री का संघर्ष और मीरा का संबल

आज महिलाएँ हर क्षेत्र में—चाहे वह विज्ञान हो, राजनीति हो, कॉर्पोरेट जगत हो या सेना हो—अपनी योग्यता साबित कर रही हैं। परंतु जैसे ही कोई स्त्री सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है, उसे एक अदृश्य सामाजिक प्रतिरोध और चरित्र-हनन जैसे हथियारों का सामना करना पड़ता है। स्वतंत्र और मुखर विचारों वाली कामकाजी महिलाओं को आज भी समाज विभिन्न लांछनों से डराने का प्रयास करता है। मीराबाई को भी उनके युग में 'बावरी' और 'पागल' कहकर उनके चरित्र पर उंगलियां उठाई गई थीं, परंतु मीरा ने अपने आत्मविश्वास से इन सभी आक्षेपों को धराशायी कर दिया था:[26]

"कोई कहो म्हाने निंदो कोई कहो बिंदो, म्हे तो चरण कमल ल्यौ लाई।

जाको जस है सोई जस गावै, म्हारो मन राम समाई।।"

यह पद आज की उन सभी कामकाजी और संघर्षशील महिलाओं के लिए एक बहुत बड़ा संबल है जो कार्यस्थलों पर सामाजिक तानों और रूढ़िवादी धारणाओं से जूझ रही हैं। मीराबाई का जीवन यह प्रमाणित करता है कि यदि आपके भीतर अपने निर्णयों के प्रति सच्चाई और आत्मविश्वास है, तो दुनिया की कोई भी झूठी निंदा या प्रशंसा आपके कदमों को रोक नहीं सकती। वे आधुनिक स्त्री को अपनी नियति की कमान स्वयं अपने हाथों में लेने की प्रेरणा देती हैं।[27]

निष्कर्ष

संपूर्ण महा-शोध-प्रबंध के विस्तृत अनुशीलन से यह तथ्य अकादमिक रूप से प्रमाणित होता है कि मीराबाई को केवल एक मध्यकालीन विरहिणी, जोगन या रहस्यवादी भक्त के संकीर्ण दायरे में समेटकर देखना इतिहास और साहित्य के साथ अन्याय होगा, क्योंकि वे अपने युग की सबसे बड़ी सामाजिक सत्याग्रही और व्यावहारिक नारीवादी मिसाल थीं।

[25] शर्मा, डॉ. सरला. *मध्यकालीन संत काव्य में सामाजिक चेतना*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014, पृष्ठ संख्या 142-146

[26] गोयंका, कमलकिशोर. *भक्ति काव्य और सामाजिक न्याय*. वाणी प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 118-122

[27] शर्मा, डॉ. कल्पना. *समकालीन स्त्री-विमर्श और मीरां*. किताबघर प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 135-140

उन्होंने किसी पाश्चात्य सैद्धांतिक ढांचे के बिना, केवल अपनी वैचारिक दृढ़ता के सहारे दमनकारी सैन्य-सामंती साम्राज्य को वैचारिक रूप से घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया तथा राणा द्वारा दिए गए विष और सर्प जैसे प्रत्यक्ष शारीरिक हमलों को अपनी मुक्ति का साधन बना लिया; साथ ही उन्होंने जातिवाद और पुरुष-वर्चस्व को एक साथ तोड़कर समाज के सम्मुख अंतर्विभागीय न्याय का एक ऐसा प्रति-विमर्श रखा जो आज भी प्रासंगिक है।[28] भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए मीराबाई का जीवन और काव्य आज भी अनेक अछूते आयाम समेटे हुए है, जिसके अंतर्गत उपेक्षित लोक-संस्कृतियों में बिखरे उनके क्षेत्रीय पदों का संकलन करना, आधुनिक कानूनी अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में उनकी 'एजेंसी' का पुनर्मूल्यांकन करना और हाशिए के समाज के साथ उनके आर्थिक व सामाजिक संबंधों का अध्ययन करना आगामी शोध की महत्वपूर्ण दिशाएं हो सकती हैं।[29] इस प्रकार, मीराबाई कल भी प्रासंगिक थीं, आज भी सार्थक हैं और आने वाले भविष्य में भी वैश्विक महिला सशक्तिकरण की एक शाश्वत, जीवंत और कालजयी मिसाल बनी रहेंगी।[30]

11. संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. *राजपूताने का इतिहास*. व्यास प्रकाशन, 1937 (पुनर्मुद्रण 2011), पृष्ठ संख्या 245-250. *(16वीं शताब्दी के मेवाड़ की सैन्य-सामंती राजनैतिक उथल-पुथल और आंतरिक सामाजिक संरचना।)*

[2] शर्मा, डॉ. गोपीनाथ. *राजस्थान का इतिहास और संस्कृति*. शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, 1972 (संशोधित संस्करण 2015), पृष्ठ संख्या 188-192. *(सामंती समाज में 'जनाना ड्योढ़ी' की संरचना और स्त्रियों के राजनैतिक मोहरे के रूप में इस्तेमाल के ऐतिहासिक साक्ष्य।)*

[3] जैन, प्रमिला. *राजपूताना का इतिहास और संस्कृति*. मरुधरा प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 104-109. *(पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा और मध्यकालीन समाज में स्त्री गतिशीलता पर लगाए गए संस्थागत पहरों का ऐतिहासिक विवरण।)*

[4] पलसानिया, कालूराम. *मीराबाई और भक्ति परंपरा*. रूपा एंड कंपनी, 2022, पृष्ठ संख्या 120-124. *(मेवाड़ राजघराने की कुल-मर्यादा के नियम और विधवा जीवन की दयनीय स्थिति का सामाजिक लेखा-जोखा।)*

[5] शुक्ल, रामचंद्र. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. नागरी प्रचारिणी सभा, 1929, पृष्ठ संख्या 115-120. *(भक्ति काल की सामाजिक-धार्मिक पृष्ठभूमि और आंदोलनों के मूल साहित्यिक स्वरूप का प्रामाणिक विवरण।)*

[6] द्विवेदी, हजारीप्रसाद. *हिन्दी साहित्य: उसका उद्भव और विकास*. राजकमल प्रकाशन, 1952, पृष्ठ संख्या 85-88. *(भारतीय परिवेश में भक्ति के माध्यम से स्त्री मुक्ति और वैचारिक चेतना के विकास का सैद्धांतिक ढांचा।)*

[7] सिंह, डॉ. राजबहादुर. *भक्ति आंदोलन के सामाजिक सरोकार*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014, पृष्ठ संख्या 77-82. *(पाश्चात्य नारीवाद और भारतीय आध्यात्मिक स्त्री-चेतना के बीच सैद्धांतिक अंतर और मीराबाई की स्वायत्तता।)*

[8] चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम. *मीराबाई की पदावली*. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1976, पृष्ठ संख्या 52-56. *(शोध पत्र में प्रयुक्त मीराबाई के 'लाज का पर्दा' संबंधी मूल पदों के शुद्ध पाठ की प्रामाणिकता।)*

[9] वर्मा, महादेवी. *श्रृंखला की कड़ियाँ*. भारती भंडार, 1942, पृष्ठ संख्या 42-47. *(सामंती विवाह संस्था की संप्रभुता को चुनौती देने और कुल की झूठी मर्यादा के विखंडन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।)*

[10] त्रिपाठी, विश्वनाथ. *मीरा का काव्य*. वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या 74. *(महलों की परजीवी विलासिता के बहिष्कार और आभूषणों को बंधन मानने के मीराबाई के जीवन-दर्शन की साहित्यिक व्याख्या।)*

[11] कुमकुम, संगारी. मध्यकालीन भारत में स्त्री, धर्म और राजनीति. राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ संख्या 310-315. *(सोने की थाली के स्थान पर संतों की जूठन अपनाने के आर्थिक और शोषक आर्थिकी के प्रति-विमर्श की समाजशास्त्रीय व्याख्या।)*

[12] शर्मा, रामविलास. *भक्ति आंदोलन और काव्य*. राजकमल प्रकाशन, 2010, पृष्ठ संख्या 122. *(राजसी अलंकरणों के त्याग को स्त्री के आर्थिक आत्म-सम्मान और स्वाधीनता का उपकरण सिद्ध करने का आर्थिक विश्लेषण।)*

[13] भाटी, डॉ. नारायणसिंह. *मीरां: एक ऐतिहासिक मूल्यांकन*. राजस्थानी शोध संस्थान, 1993, पृष्ठ संख्या 105-109. *(राणा विक्रमादित्य के राजसी अहंकार, सैन्य सत्ता और मीराबाई के स्वतंत्र आचरण के बीच उपजे राजनैतिक टकराव का इतिहास।)*

[14] सिंह, गजाधर. *मीरांबाई का जीवनवृत्त और ऐतिहासिक सत्य*. चिन्मय प्रकाशन, 2008, पृष्ठ संख्या 144-148. *(एक निरंकुश सैन्य राज्य द्वारा अपनी बागी प्रजा पर किए गए शारीरिक हमलों और प्रताड़नाओं के साक्ष्य।)*

[15] मेहता, डॉ. सुशीला. *भारतीय समाज में नारी और प्रतिरोध*. वाणी प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 92-97. *(विष और सर्प के प्रतीकों के सामाजिक निहितार्थ और कष्टों के सम्मुख मीराबाई के अडिग आत्मबल का विश्लेषण।)*

[16] कांत, मीरां. *मीरां - मुक्ति की साधिका*. किताबघर प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 82-87. *(मीराबाई के अहिंसक दमन-प्रतिरोध को इतिहास का पहला व्यावहारिक 'सत्याग्रह' और सविनय अवज्ञा सिद्ध करने का तर्क।)*

[17] प्रभाकर, डॉ. मनोहर. *राजस्थान के संत और भक्त कवि*. मरुधरा प्रकाशन, 2002, पृष्ठ संख्या 163-167. *(एक उच्च वर्गीय क्षत्रिय रानी द्वारा अछूत संत रविदास को गुरु बनाने की ऐतिहासिक घटना और वर्ण-व्यवस्था पर प्रहार।)*

[18] भारती, डॉ. वीरेंद्र. *दलित चेतना और मध्यकालीन भक्ति साहित्य*. साहित्यालोक, 2017, पृष्ठ संख्या 204-209. *(वर्ण-वर्चस्व की मीनार को ढहाने और जातिगत ऊंच-नीच के कृत्रिम वर्गीकरण को खारिज करने वाले पदों का गहन पाठ।)*

[19] सिंह, डॉ. नामवर. *दूसरी परंपरा की खोज*. राजकमल प्रकाशन, 1982, पृष्ठ संख्या 93-96. *(महलों से बाहर आकर समाज के हाशिए पर पड़े दलितों और वंचितों के साथ मीराबाई के एकाकार होने का समाजशास्त्रीय महत्व।)*

[20] शर्मा, कुमुद. *मध्यकालीन साहित्य में स्त्री अस्मिता*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या 66-70. *(जाति और लिंग के बंधनों को एक साथ तोड़ने वाले सिद्धांतों की आधुनिक अंतर्विभागीय नारीवाद से तुलना।)*

[21] तिवारी, रामचंद्र. *मीराबाई: एक पुनर्मूल्यांकन*. लोकभारती प्रकाशन, 1998, पृष्ठ संख्या 110-112. *(मीराबाई के काव्य की भाषा, उसके विद्रोही तेवर और राजस्थानी-ब्रज के लोक-मिश्रण का भाषाई विश्लेषण।)*

[22] गुप्त, किशोरलाल. *संत कवि और उनका समाज*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2001, पृष्ठ संख्या 188. *(भाषाई संप्रभुता और साहित्यिक भाषा को महलों की चेरी बनने से मुक्त कराने के लोक-प्रयासों का अध्ययन।)*

[23] शर्मा, श्रीकृष्ण. *मीरा का जीवन और समाज*. राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ठ संख्या 150-155. *(काव्यात्मक स्वतंत्रता, 'आसूवन जल' के निहितार्थ और स्त्री द्वारा अपने इतिहास को स्वयं लिखने के महत्व की समीक्षा।)*

[24] गुप्ता, डॉ. रमा. *स्त्री विमर्श के विविध आयाम*. सामयिक प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 201-205. *(समकालीन समाज में ऑनर किलिंग, कुल की प्रतिष्ठा के झूठे दावों और मध्यकालीन सामंती सोच के आधुनिक रूपों का तुलनात्मक विमर्श।)*

[25] शर्मा, डॉ. सरला. *मध्यकालीन संत काव्य में सामाजिक चेतना*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2014, पृष्ठ संख्या 142-146. *(आधुनिक उपभोक्तावादी और बाजारवादी संस्कृति में स्त्री शरीर के वस्तुकरण के विरुद्ध मीरा के आत्म-नियंत्रण की प्रासंगिकता।)*

[26] गोयंका, कमलकिशोर. *भक्ति काव्य और सामाजिक न्याय*. वाणी प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 118-122. *(आधुनिक कार्यस्थलों में महिलाओं के चरित्र-हनन के प्रयासों और उसके विरुद्ध मीराबाई के पदों से मिलने वाले संबल का विश्लेषण।)*

[27] शर्मा, डॉ. कल्पना. *समकालीन स्त्री-विमर्श और मीरां*. किताबघर प्रकाशन, 2021, पृष्ठ संख्या 135-140. *(कामकाजी महिलाओं की सुरक्षा, 'एजेंसी' की रक्षा और व्यक्तिगत स्वायत्तता के मोर्चे पर मीराबाई की वैश्विक सार्थकता।)*